प्यारे नबी (सल्ल०)
की
चहेती बेटियाँ

फ़ज़्ले-क़दीर नदवी
अनुवाद
एस० कौसर लईक़

सूची

'बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम'

(अल्लाह के नाम से जो बड़ा ही मेहरबान और रहम करनेवाला है।)

परिचय

अल्लाह ने नबी (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) को यूँ तो सारे इनसानों के लिए दयालु बनाया था, लेकिन बच्चों के हित में आप *(सल्ल.)* विशेष रूप से बड़ा स्नेह और दयालुता दर्शाते थे। उन्हें चूमते और प्यार करते थे। ऐसा जान पड़ता था कि आप *(सल्ल.)* के पवित्र हृदय में बच्चों के लिए प्यार और कृपा की समुद्री लहरें उठ रही हों। बच्चियों से भी आप *(सल्ल.)* बेहद लगाव रखते थे और उनपर विशेष ध्यान देते थे। हिजरत के अवसर पर जब नबी *(सल्ल.)* ने मदीने में क़दम रखा तो अंसार की छोटी-छोटी बच्चियाँ ख़ुशी के मारे दरवाज़ों से निकलकर आप *(सल्ल.)* के स्वागत में गीत गा रही थीं। नबी *(सल्ल.)* ने यह देखा तो बोले, "बच्चियो! क्या तुम मुझसे प्यार करती हो?" सभी ने एक हो कर कहा, "हाँ, अल्लाह के रसूल!" आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया, "बच्चियो! मैं भी तुमसे प्यार करता हूँ।"

नबी *(सल्ल.)* को अपनी बेटियों से बहुत प्यार था। आप *(सल्ल.)* एक दयालु बाप थे। हज़रत ख़दीजा *(रज़ि.)* की मृत्यु के पश्चात जब माँ का साया बच्चों के सिर से उठ गया तो नबी *(सल्ल.)* ने इस कमी को पूरा करने की हर संभव कोशिश की और तरह-तरह से उनका दिल जीतने का प्रयास किया। आप *(सल्ल.)* की चारों बेटियाँ भी आप *(सल्ल.)* पर फ़िदा थीं। आप *(सल्ल.)* की तीन बेटियाँ तो आपके जीवन काल ही में चल बसीं। सबसे छोटी और चहेती बेटी हज़रत फ़ातिमा *(रज़ि.)* भी आप *(सल्ल.)* के देहावसान के बाद ज़्यादा दिन जीवित न रह सकीं और आप *(सल्ल.)* के पास पहुँच गईं।

नबी *(सल्ल.)* की गोद में पलने और फ़लने-फूलनेवाली इन पाक हस्तियों की ज़िन्दगी सादगी, संतोष, तपस्या और आज्ञापालन का एक अनूठा आदर्श है। उनका जीवन-चरित्र और उच्च आचरण मुसलमान बच्चों के लिए अमल का बेहतरीन नमूना है।

—हकीम मुहम्मद सईद

हज़रत ज़ैनब *(रज़ि॰)*

हज़रत ज़ैनब *(रज़ि॰)* नबी *(सल्ल॰)* की बड़ी बेटी थीं, ये लाखों में एक थीं। अपने बुज़ुर्ग बाप मुहम्मद *(सल्ल॰)* से काफ़ी हद तक मिलती-जुलती थीं।

हज़रत ख़दीजा *(रज़ि॰)* की एक बहन ख़ौला थीं, जिनके बेटे का नाम अबुल-आस था। अपनी ख़ाला हज़रत ख़दीजा के भी वे बड़े चहेते थे। उनका तौर-तरीक़ा अत्यन्त सज्जनतापूर्ण था। शक्लो-सूरत भी बहुत अच्छी थी। नबी *(सल्ल॰)* की सेवा में भी बड़े अदब से हाज़िर होते।

एक दिन ऐसा हुआ कि वे नबी *(सल्ल॰)* के पास आए और शर्माते हुए हज़रत ज़ैनब *(रज़ि॰)* के लिए उन्होंने पैग़ाम दिया। नबी *(सल्ल॰)* ख़ुश हुए, लेकिन यह बात चूँकि हज़रत ज़ैनब *(रज़ि॰)* से भी पूछने की थी, इसलिए आप *(सल्ल॰)* उनके पास आए और बोले–

"बेटी, अबुल-आस तुम्हारा नाम ले रहे थे।"

हज़रज ज़ैनब *(रज़ि॰)* ने शर्म और लज्जा से निगाहें नीची कर लीं और चुप रहीं। यही सबसे बेहतर जवाब था।

नबी *(सल्ल॰)* बाहर आए। अबुल-आस को मुबारक बाद दी, दुआएँ दीं और पैग़ाम मंज़ूर कर लिया। अबुल-आस की क़िस्मत जाग उठी।

शादी हो गई और हज़रत ज़ैनब *(रज़ि॰)* विदा होकर अपने घर चली गईं। उनके शौहर अबुल-आस एक बड़े व्यापारी थे और अपने कारोबार के सिलसिले में अक्सर बाहर रहते थे। जब शाम (सीरिया) के सफ़र पर जाते तो कई-कई दिन के बाद लौटते। हज़रत ज़ैनब *(रज़ि॰)* उनकी अनुपस्थिति में उनकी सारी चीज़ों की देख-भाल करतीं। थोड़े ही दिनों में अपनी सेवा, प्यार और अच्छे व्यवहार से उन्होंने शौहर का दिल जीत लिया।

एक बार अबुल-आस अपने व्यापार के काम से सफ़र पर गए हुए थे। तभी नबी *(सल्ल.)* को अल्लाह की ओर से नबी बनाया गया। हज़रत ज़ैनब को इसकी ख़बर हुई तो वे आप *(सल्ल.)* की सेवा में हाज़िर हुईं और आप *(सल्ल.)* पर अपनी माँ की तरह ईमान ले आईं।

जब अबुल-आस सफ़र से लौटे तो हज़रत ज़ैनब *(रज़ि.)* ने उन्हें बताया कि मेरे वालिद मुहम्मद *(सल्ल.)* को अल्लाह ने रसूल बनाया है। उन पर अल्लाह का कलाम उतरा है, इसलिए अपनी माँ के साथ वे भी ईमान ले आई हैं।

अबुल-आस ख़ामोश हो गए।

"क्या सोच रहे हैं? बोलिए, चुप क्यों हो गए?" हज़रत ज़ैनब *(रज़ि.)* ने पूछा।

"मुझे विश्वास है कि आपके वालिद ने सच कहा, लेकिन मैं सोच रहा हूँ..... ।"

हज़रत ज़ैनब ने पूछा, "क्या सोच रहे हैं? बताइए।"

अबुल-आस ने कहा, "मैं सोच रहा हूँ कि अगर मैं भी जाकर उन पर ईमान ले आऊँ तो मेरी जाति मुझे ताना देगी कि अपनी बीवी के दबाव में आकर अबुल-आस ने अपनी जाति और क़ौम को शर्मिन्दा कर दिया और उनकी बात मानने लगा जो मूर्ति-पूजकों को बुरा कहते हैं और बाप-दादा के धर्म को ग़लत बताते हैं। मैं अपने अन्दर अपनी जाति व क़ौम की दुश्मनी का साहस नहीं पाता, इसी लिए चुप हूँ।"

हज़रत ज़ैनब और अबुल-आस दोनों गहरी सोच में डूब गए। बड़ी बेचैनी में रात कटी।

यह पहला अवसर था कि वह घर जहाँ ख़ुशियाँ थीं, आज गहरी चिन्ता के कारण उदास-उदास लग रहा था।

उधर नबी होने के एलान से सारी क़ौम नबी *(सल्ल.)* की दुश्मन हो गई और आप *(सल्ल.)* पर तरह-तरह के ज़ुल्म ढाने लगी।

नुबुव्वत के इनकारियों का अत्याचार जब आप *(सल्ल.)* को सही रास्ते से न हटा सका तो काफ़िरों ने यह फ़ैसला किया कि नबी *(सल्ल.)* को ही रास्ते से हटा दें। कोई उनसे न मिले, कोई बात न करे, उनको शहर में रहने न दिया जाए। अंततः वह दिन भी आया जब नबी *(सल्ल.)* अपने चचा अबू-तालिब की एक घाटी में क़ैद कर दिए गए। उनका वहाँ से निकलना और शहर में आना-जाना बन्द कर दिया गया। इस क़ैद से जब आपको नजात मिली तो दूसरे सितम का सिलसिला शुरू हो गया। हद यह है कि आप *(सल्ल.)* पर पत्थर फेंके जाते और रास्ते में काँटे तक बिछाए जाते।

एक दिन अबू-जहल एक भारी पथर लेकर ख़ाना काबा पहुँचा, जहाँ नबी *(सल्ल.)* अल्लाह की इबादत में लगे हुए थे और सजदा कर रहे थे। आप *(सल्ल.)* के पवित्र सिर पर वह पत्थर फेंकना ही चाह रहा था कि कुछ लोगों ने उसको रोक लिया।

हज़रत ज़ैनब *(रज़ि.)* अपने वालिद मुहम्मद *(सल्ल.)* पर ये सारे अत्याचार होते हुए देखतीं और ख़ून के आँसू रोतीं, पर कहीं कोई दुख बाँटनेवाला नज़र न आता था। अल्लाह का करना ऐसा हुआ कि उनकी शफ़ीक़ और मेहरबान माँ भी चल बसीं। इसके कुछ ही दिन बाद नबी *(सल्ल.)* से मुहब्बत और हमदर्दी रखने वाले चचा अबू-तालिब भी न रहे।

फिर एक दिन ऐसा भी आया कि पूरे शहर मक्का में यह ख़बर फैल गई कि क़ुरैश ने नबी *(सल्ल.)* को घर छोड़ने पर मजबूर कर दिया और अब वे मक्का से मदीना जा रहे हैं।

अपने वालिद नबी-ए-करीम *(सल्ल.)* की मौजूदगी में हज़रत ज़ैनब का हर ग़म हलका हो जाता था, मगर इस आख़िरी सहारे के भी जुदा होने के ख़याल से कलेजा मुँह को आ गया, लेकिन अल्लाह का हुक्म यही था कि आप *(सल्ल.)* हिजरत करें। हज़रत ज़ैनब *(रज़ि.)* ने सब्र किया और नबी

(सल्ल.) हिजरत करके मदीना चले गए। जब वहाँ सकुशल पहुँचने की ख़बर आ गई तो हज़रत ज़ैनब *(रज़ि.)* की ज़ान में जान आई।

कुछ दिनों के बाद मदीना से एक प्रतिनिधमण्डल मक्का आया और हज़रत ज़ैनब *(रज़ि.)* की चहेती बहन हज़रत फ़ातिमा *(रज़ि.)* और उम्मे-कुलसूम भी उन्हीं लोगों के साथ मदीना चली गईं। अब हज़रत ज़ैनब *(रज़ि.)* बिल्कुल अकेली हो गईं। माँ हज़रत ख़दीजा *(रज़ि.)* दुनिया से जा चुकी थीं। बाप मुहम्मद *(सल्ल.)* हिजरत कर के मदीना जा चुके थे। अब उनकी प्यारी और चहेती बहनें भी मदीना चली गईं। हज़रत ज़ैनब *(रज़ि.)* के लिए बस एक अल्लाह का सहारा रह गया। उसी के हुक्म के इन्तिज़ार में वे दिन बिताने लगीं।

एक दिन हज़रत ज़ैनब *(रज़ि.)* के शौहर अबुल-आस मक्का के एक व्यापारी क़ाफ़िले के साथ निकले। मदीना की सीमा पर मुसलमानों ने उनको रोका, इसलिए कि क़ाफ़िले की नीयत ठीक नहीं थी। एक हल्के से मुक़ाबले के बाद उस क़ाफ़िले के लोग गिरफ़्तार हो गए और यह विचित्र संयोग था कि उन्हीं में अबुल-आस भी थे।

जब अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* के सामने तमाम क़ैदियों को पेश किया गया तो आप *(सल्ल.)* ने अबुल-आस को अलग कर दिया और सहाबा *(रज़ि.)* से फ़रमाया, "क़ैदियो के साथ अच्छा सुलूक करो।"

उधर हज़रत ज़ैनब *(रज़ि.)* तो पहले ही से अकेलेपन के कारण बेहद परेशान थीं। अबुल-आस की गिरफ़्तारी की ख़बर से वे और भी दुखी हो गईं। आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी न थी। उनका जी चाहता था कि अबुल-आस जल्द क़ैद से छूटकर मक्का आ जाएँ और उनके बुज़ुर्ग बाप मुहम्मद *(सल्ल.)* उनपर कृपा करें।

उस ज़माने में क़ैदियों को फ़िदिया (प्रतिदान) देकर छुड़ा लिया जाता था, मगर उनके पास पैसा कहाँ था।

उन्होंने काँपते हुए हाथों से अपना बक्स खोला और एक हार निकाला। यह वह हार था जो उनको उनकी मरहूम माँ ने दिया था। उनकी आँखों में आँसू आ गए। दयालु माँ याद आ गईं, अपने देवर अम्र बिन-रबीअ को बुलाया और कहा, "यह हार लेकर मदीना चले जाओ और फ़िद्या देकर अपने भाई अबुल-आस को छुड़ा लाओ।"

अम्र बिन-रबीअ ने मदीना पहुँचकर जब वह हार नबी *(सल्ल.)* की सेवा में प्रस्तुत किया तो उसे देखकर आप *(सल्ल.)* की आँखें भर गईं। चहेती बीवी और सबसे पहले ईमान लानेवाली हज़रत ख़दीजा *(रज़ि.)* याद आ गईं। सहाबा भी आप *(सल्ल.)* को दुखी देखकर ग़मगीन हो गए। एक लम्बी ख़ामोशी के बाद नबी *(सल्ल.)* ने फ़रमाया—

"लोगो! अगर इस फ़िदिये के बदले में क़ैदी को रिहा कर दो और यह हार भी लौटा सको तो ऐसा कर दो।"

सभी ने एक स्वर में कहा, "हाँ! ऐ अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* हम ऐसा ही करेंगे।"

अबुल-आस रिहा हो गए। जब वे मक्का जाने लगे तो नबी *(सल्ल.)* ने फ़रमाया—

"अबुल-आस! ज़ैनब को तुम मदीना भेज दो, इसलिए कि वे मुसलमान हो चुकी हैं, उनके इस्लाम क़बूल कर लेने से अब दोनों की राहें अलग-अलग हो गई हैं।"

अबुल-आस ने वादा कर लिया और जब वे मक्का पहुँचे तो हज़रत ज़ैनब *(रज़ि.)* बेइन्तिहा ख़ुश हुईं और उनका सारा ग़म जाता रहा।

अबुल-आस ने कहा, "ज़ैनब! मैं तुम्हें रुख़्सत करने आया हूँ।" फिर अपना वादा बताया।

हज़रत ज़ैनब *(रज़ि.)* मक्का से रुख़सत हुईं। अपने प्यारे शौहर को छोड़कर जब जाने लगीं तो उनके दिल का हाल कुछ अजीब था। मगर इस्लाम तो त्याग और क़ुर्बानी ही का धर्म है। हज़रत ज़ैनब *(रज़ि.)* ने इसका

सबसे अच्छा नमूना पेश किया। मगर आज़माइश का सिलसिला अभी कहाँ ख़त्म हुआ। जब वे मक्का से जाने लगीं तो क़ुरैश ने उन्हें घेर लिया। उनको बड़ी क्रूरता से मारा-पीटा। उनको सख़्त चोटें आईं और शरीर से ख़ून बहने लगा। मुश्किल से अबुल-आस उनको किसी तरह फिर मक्का वापस ले कर आए। कुछ दिनों के बाद मौक़ा पाकर अपने छोटे भाई अम्र बिन-रबीअ के साथ उन्हें मदीना रवाना किया। अम्र बिन-रबीअ उन्हें हिफ़ाज़त के साथ नबी *(सल्ल.)* की सेवा में मदीना पहुँचाकर वापस हुए। उनका भी दिल इस घटना से बेहद रंजीदा था।

दिन गुज़रते गए, एक बार फिर अबुल-आस क़ुरैश के क़ाफ़िले के साथ सीरिया के लिए रवाना हुए।

नबी *(सल्ल.)* को जब ख़बर मिली तो आप *(सल्ल.)* ने ज़ैद-बिन-हारिसा *(रज़ि.)* को उस का हालचाल लेने के लिए भेजा। यह हिजरत का छठा साल था और जुमादल-ऊला का महीना था। क़ाफ़िले का जब सामना हुआ तो उसने अपने सारे साज़ो-सामान को ज़ैद-बिन-हारिसा *(रज़ि.)* के हवाले कर दिया। उन्होंने क़ाफ़िले में शामिल लोगों को गिरफ़्तार कर लिया। उनमें अबुल-आस भी थे।

अबुल-आस दोबारा गिरफ़्तार होकर मदीना पहुँचे और उन्होंने हज़रत ज़ैनब *(रज़ि.)* से पुराने रिश्ते का वास्ता देकर पनाह माँगी, उन्होंने पनाह दे दी।

यह बड़ा दुखद दृश्य था कि अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* जब फ़ज्र की नमाज़ से फ़ारिग़ होकर घर लौट रहे थे, तो दरवाज़े पर एक साया-सा नज़र आया। आप *(सल्ल.)* आगे बढ़े तो हज़रत ज़ैनब *(रज़ि.)* ने आप *(सल्ल.)* को सलाम किया और बड़े अदब से रुँधे हुए गले से कहा, "अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)*! हमने अबुल-आस को पनाह (शरण) दे दी है।"

नबी *(सल्ल.)* तुरन्त सहाबा के दरमियान तशरीफ़ लाए और बोले—

"लोगो! क्या तुमने वह सुना जो मैंने सुना!"

सहाबा *(रज़ि.)* ने अर्ज़ किया, "हाँ, ऐ अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)*।"

फिर आप *(सल्ल.)* ने कहा, "ईमानवालों के स्नेह का हाथ ग़ैर-मुस्लिमों पर भी होता है। मोमिन अपने से दुर्बल लोगों को पनाह देते हैं।"

फिर आप *(सल्ल.)* उस घर में तशरीफ़ लाए जहाँ हज़रत ज़ैनब *(रज़ि.)* थीं। आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया कि अबुल-आस को मक्का रवाना कर दो। फिर ज़ैनब *(रज़ि.)* को आदेश दिया कि वे उनके क़रीब न रहें, इसलिए कि अबुल-आस जब तक मुशरिक हैं, उनके निकट हज़रत ज़ैनब *(रज़ि.)* का रहना मुनासिब नहीं।

अबुल-आस मक्का की तरफ़ रवाना हो गए। वहाँ पहुँचकर जिसका भी कुछ बक़ाया उनके जिम्मे था; अदा कर दिया और एलान किया कि वे मुसलमान हो गए हैं। फिर मदीना लौट गए। जब वे एक मुसलमान की हैसियत से वहाँ पहुँचे तो नबी *(सल्ल.)* ने हज़रत ज़ैनब *(रज़ि.)* को अबुल-आस के साथ रहने का आदेश दे दिया। घर की सारी ख़ुशियाँ लौट आईं और ग़म के सारे बादल छट गए।

एक साल तक घर हर तरह की ख़ुशियों से भरा रहा। फिर हमेशा के लिए जुदाई की घड़ी आई और हज़रत ज़ैनब *(रज़ि.)* अपनी लम्बी बीमारी के बाद ईमान, सब्र, क़ुर्बानी और अल्लाह और उसके रसूल की फ़रमाँबरदारी का मुकम्मल नमूना पेश करके हिजरत के आठवें साल संसार से विदा हो गईं। "इन-न लिल्लाहि व इन-न इलैहि राजिऊन।" अबुल-आस रो पड़े। नबी *(सल्ल.)* को भी बहुत ग़म हुआ। आप *(सल्ल.)* की आँखों से भी आँसू निकल पड़े। आपने हुक्म दिया कि उनको नहलाया जाए, फिर आप *(सल्ल.)* ने उनकी नमाज़े-जनाज़ा पढ़ाई और उनकी क़ब्र तक उनको पहुँचाया।

अल्लाह ने हज़रत ज़ैनब को फूल से कोमल दो बच्चे प्रदान किए। बेटे का नाम अली था, जिनका बचपन में ही इन्तिक़ाल हो गया था और दूसरी बेटी उमामा थीं, जिनका निकाह बाद में हज़रत अली *(रज़ि.)* से हुआ।

हज़रत रुक़य्या *(रज़ि.)*

अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* की दूसरी बेटी हज़रत रुक़य्या *(रज़ि.)* थीं। वे हज़रत ज़ैनब *(रज़ि.)* के बाद पैदा हुईं। उनसे छोटी हज़रत 'उम्मे-कुलसूम' *(रज़ि.)* थीं, जो हज़रत रुक़य्या *(रज़ि.)* के बाद पैदा हुई थीं। इनकी उम्र में ज़्यादा अन्तर नहीं था, इसलिए दोनों एक साथ पली-पढ़ीं। हज़रत ज़ैनब *(रज़ि.)* जब अपने घर चली गईं तो नबी *(सल्ल.)* के मुबारक घर में अब यही दो फूल-सी बच्चियाँ थीं, जो आपस में बड़ी मुहब्बत से रहती थीं। हर बात में अपने ऊपर एक-दूसरे को प्राथमिकता देती थीं। उन दोनों का आपसी प्यार देखकर लोग हैरत करते थे। कौन जानता था कि उन दोनों के दिलों को अल्लाह ने एक-दूसरे के साथ ऐसा ज़ोड़ दिया है कि वे कभी एक-दूसरे से अलग नहीं हो सकतीं।

हज़रत ज़ैनब *(रज़ि.)* को अपने वालिद मुहम्मद *(सल्ल.)* के मुबारक घर से विदा हुए जब कुछ ही दिन हुए तो हज़रत रुक़य्या *(रज़ि.)* और उम्मे-कुलसूम भी शादी के क़ाबिल हो गईं। एक दिन ऐसा हुआ कि नबी *(सल्ल.)* के चचा हज़रत अबू-तालिब नबी *(सल्ल.)* के पास आए और कहने लगे, "हम आपके पास अपनी दोनों बेटियों रुक़य्या और उम्मे-कुलसूम के लिए आपके चचा अबू-लहब के दो लड़कों उतबा और उतैबा का पैग़ाम ले कर आए हैं। हमें उम्मीद है कि आप क़बूल करेंगे।"

यह बात उस वक़्त की है जब मुहम्मद *(सल्ल.)* नबी नहीं बनाए गए थे। मुहम्मद *(सल्ल.)* ने फ़रमाया, "रिश्तेदारी और ख़ानदानी ताल्लुक़ तो है, मगर चचा आप इतनी मोहलत तो दें कि अपनी दोनों बच्चियों से पूछ लूँ।

मुहम्मद *(सल्ल.)* ने अपनी चहेती बीवी हज़रत ख़दीजा *(रज़ि.)* और अपनी दोनों बेटियों हज़रत रुक़य्या *(रज़ि.)* और हज़रत उम्मे-कुलसूम *(रज़ि.)* के सामने बात रखी।

हज़रत ख़दीजा *(रज़ि.)*, जो माँ थीं, सुनकर गहरी सोच में पड़ गईं। बात यह थी कि उम्मे-जमील, जो अबू-लहब की बीवी और नबी *(सल्ल.)* की उन दोनों पुत्रियों की होने वाली सास थी बड़ी ही सख़्त पत्थर दिल औरत थी। नैतिकता तो उसे छूकर भी नहीं गई थी। वही मुँह-फट गाली-गलौज करने वाली, ग़ुस्सैल और साथ ही कीना-कपट वाली थी।

हज़रत ख़दीजा *(रज़ि.)* यह सब कुछ सोचकर काँप उठीं, लेकिन वे कुछ बोली नहीं। इसलिए कि उनको डर था कि कहीं नबी *(सल्ल.)* को यह ख़याल न हो कि वे उनके रिश्तेदारों को उनसे छुड़ा रही हैं। इस कारण वे उसी तरह चुप हो रहीं जैसे दोनों बच्चियाँ शर्म और लज्जा के मारे चुप हो गईं।

बात पक्की हो गई। डर और भय के वातावरण में शादी हो गई। मेहरबान बाप ने अपनी दोनों बच्चियों को मुबारकबाद और दुआ दी—

"अल्लाह तुम लोगों का संरक्षक हो"

इस तरह हज़रत रुक़य्या *(रज़ि.)* और हज़रत उम्मे-कुलसूम *(रज़ि.)* ने नबी बनाया अपने घर यानी अबू-लहब के यहाँ पहुँचीं। उधर मुहम्मद *(सल्ल.)* को अल्लाह ने नबी बनाया। आप *(सल्ल.)* ने लोगों को एक अल्लाह की बन्दगी की दावत दी, मूर्ति पूजा और बुरे कामों से मना किया। सारा अरब आप *(सल्ल.)* का विरोधी और दुश्मन हो गया। अबू-लहब और उसके घरवाले भी विरोध में आगे-आगे और नबी *(सल्ल.)* की दुश्मनी में पेश-पेश थे।

दुश्मनी और विरोध के इस तूफ़ान में हज़रत ख़दीजा *(रज़ि.)* को अपनी दोनों बच्चियाँ रुक़य्या *(रज़ि.)* और उम्मे-कुलसूम *(रज़ि.)* याद आईं। कहीं ऐसा न हो कि दुराचारी उन मासूमों का जीना दूभर कर दे। हुआ

भी ऐसा ही। अबू-लहब की बीवी उम्मे-जमील ने नबी *(सल्ल.)* की उन दोनों बेटियों पर ज़ुल्म और ज़्यादती की इन्तिहा कर दी। हद यह है कि अपने दोनों लड़कों उतबा और उतैबा को मजबूर किया कि वे उनको तलाक़ दे दें। उन्हें सख़्त क़समें खिलाईं और अन्ततः उस कठोर हृदय और बदबख़्त औरत ने प्यारे नबी *(सल्ल.)* की दुश्मनी में उन मासूम बच्चियों को तलाक़ दिलवाकर ही दम लिया। और ये बेटियाँ अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* के घर चली आईं।

अबू-लहब की बीवी के ज़ुल्म की दास्तान यहीं ख़त्म नहीं होती। वह और उसका कमीना शौहर हमेशा इस फ़िक्र में रहते कि नबी *(सल्ल.)* को किस तरह हानि पहुँचाएँ और आप *(सल्ल.)* का चलना-फिरना और रहना-सहना दूभर कर दें। यह कमीनी औरत आप *(सल्ल.)* के रास्ते में बिछाने के लिए दिन भर नुकीले काँटे चुनती। अल्लाह ने उसकी इस नीच हरकत पर उसकी भर्त्सना के लिए "तब्बत यदा अबी-लहबिंव-व-तब्ब" वाली सूरा उतारी।

काफ़िरों का यह ओछापन और उनकी दुश्मनी भी हमारे प्यारे नबी *(सल्ल.)* को सत्य-मार्ग से न हटा सकी।

हमारे नबी *(सल्ल.)* सारी तकलीफ़ें और दुख बड़ी साबित क़दमी के साथ झेलते रहे। उन्हें अल्लाह पर पूरा भरोसा था। अबू-लहब और उसके घरवालों को बड़ा ताज्जुब हुआ कि लड़कियों का तलाक़ हो गया, रास्तों में काँटे बिछाए गए, उन्हें पत्थर मारे गए, फिर भी ये अपनी बात पर जमे रहे।

इस हादसे पर नबी *(सल्ल.)* ने सोच-विचार कर हज़रत ख़दीजा *(रज़ि.)* से मशविरा किया और हज़रत रुक़य्या *(रज़ि.)* के लिए एक बेहतर रिश्ता ढूँढ निकाला और अल्लाह की कृपा से एक ऐसे व्यक्ति से उनकी शादी हो गई, जो कुल, वंश, धन-दौलत, इज़्ज़त और शराफ़त में बड़ा ऊँचा दर्जा रखता था। वह व्यक्ति हज़रत उस्मान ग़नी *(रज़ि.)* थे, जो

क़ुरैश के नौजवानों में अपनी ख़ूबियों के चलते सारे मक्का में प्रसिद्ध थे।

नबी *(सल्ल.)* ने रुक़य्या *(रज़ि.)* की शादी जब उनसे कर दी तो अत्याचारियों के तन-बदन में आग लग गई और वे मुसलमानों पर पहले से भी अधिक ज़ुल्म ढाने लगे। लोगों ने नबी *(सल्ल.)* से फ़रियाद की तो आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया—

"तुम अगर हब्शा चले जाओ तो वहाँ एक ऐसा बादशाह है जिसके रहते कोई किसी पर ज़ुल्म नहीं करता। वह सच्चाई की ज़मीन है, तुम इस मुसीबत से छुटकारा पा जाओगे जिसमें इस वक़्त पड़े हुए हो।"

हज़रत उस्मान ग़नी *(रज़ि.)* इस हुक्म के बाद अपनी बीवी हज़रत रुक़य्या *(रज़ि.)* के साथ हब्शा हिजरत कर गए। हज़रत रुक़य्या *(रज़ि.)* रोती हुई आँखों और धड़कते हुए दिल के साथ अपने माँ-बाप से जुदा हुईं, यह उनकी पहली हिजरत थी। हज़रत उस्मान *(रज़ि.)* ने उन्हें तसल्ली देते हुए कहा—

"अल्लाह हमारे साथ है और वह उनके साथ भी है जिनको हम उसके घर (काबा) के नज़दीक छोड़ कर जा रहे हैं, तुम घबराओ नहीं।"

जब हिजरत करके यह क़ाफ़िला हब्शा पहुँचा तो वहाँ उनके रहने का प्रबन्ध किया गया। वहाँ के बादशाह ने जब क़ुरैशवालों के ज़ुल्मो-सितम की कहानी सुनी तो वह बड़ा दुखी हुआ। उसने उन मज़लूम मुसलमानों को बहुत ढाढ़स बँधाई और उनके साथ बहुत प्यार और दयालुता का बर्ताव किया।

हिजरत करके वहाँ जानेवाले सुख-शान्ति के साथ रहने लगे। दिन गुज़रते गए, यहाँ तक कि हब्शा में यह ख़बर पहुँची कि हमज़ा-बिन-अब्दुल-मुत्तलिब *(रज़ि.)* और उमर-बिन-ख़त्ताब *(रज़ि.)* मुसलमान हो गए और अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* के साथियों के गरोह में शामिल हो गए।

इस ख़बर से हब्शा हिजरत करके जानेवाले मुसलामनों को अत्यन्त ख़ुशी हुई। वतन छोड़े बहुत दिन हो गए थे। सभी का दिल चाहता था कि अब नबी *(सल्ल.)* की ओर से वतन वापसी की अनुमति मिल जाए। हज़रत उस्मान *(रज़ि.)* और हज़रत रुक़य्या *(रज़ि.)* की भी दिली ख़ाहिश यही थी। अन्ततः अनुमति मिल गई और वतन रवाना हो गए।

हज़रत रुक़य्या *(रज़ि.)* जब अपने वालिद अल्लाह के रसूल मुहम्मद *(सल्ल.)* के घर पहुँची तो उन्होंने अपनी बहनों को चिमटाकर ख़ूब प्यार किया, लेकिन जब अपनी माँ के बारे में पूछा तो सब चुप हो गईं, आँखों में आँसू आ गए, इसलिए कि वे दुनिया से जा चुकी थीं। हज़रत रुक़य्या *(रज़ि.)* को बहुत सद्मा हुआ, लेकिन अल्लाह के हुक्म के आगे चूँ-चरा करने की भला किसकी मजाल है। आख़िरकार वे रो-पीटकर बैठ रहीं।

मक्का में हज़रत रुक़य्या *(रज़ि.)* अभी थोड़े ही दिन रही थीं कि अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* और आप *(सल्ल.)* के सहाबा ने मदीना तय्यबा की ओर हिजरत (प्रस्थान) कर दिया। हज़रत उस्मान ग़नी *(रज़ि.)* ने भी हिजरत की। इस तरह रुक़य्या *(रज़ि.)* मदीना मुनव्वरा पहुँच गईं। यह उनकी दूसरी हिजरत थी। वहाँ पहुँचीं तो उनके पुत्र अब्दुल्लाह पैदा हुए।

उनकी पैदाइश से हज़रत उस्मान ग़नी *(रज़ि.)* का घर खुशियों से भर गया। हज़रत रुक़य्या *(रज़ि.)* ने पिछले दिनों जो दुख उठाया था, हज़रत अब्दुल्लाह के शुभागमन ने उसे भुला दिया।

लेकिन ईमानवालों का जीवन तो निरन्तर परीक्षाओं का जीवन होता है। हज़रत रुक़य्या *(रज़ि.)* की ज़िन्दगी चन्द ही दिनों के बाद एक नई आपदा से दोचार हो गईं।

अपने चहेते बेटे हज़रत अब्दुल्लाह को गोद में लिए हुई थीं कि एक मुर्ग़ा आया और उसने बच्चे के गाल पर अपनी चोंच मारी। ज़हर फैल गया और यह फूल-सा बेटा अल्लाह को प्यारा हो गया।

हज़रत रुक़य्या *(रज़ि.)* को बहुत सद्मा हुआ। वे बीमार पड़ गईं और उन्हें चौबीसौं घंटे बुख़ार रहने लगा। हज़रत उस्मान *(रज़ि.)* ने बड़े प्यार के साथ उनकी देख-रेख और सेवा की। सेहत की दुआएँ भी माँगते रहे। लेकिन अल्लाह को कुछ और ही मंज़ूर था।

उसी दौर में बद्र की लड़ाई भी हुई। नबी *(सल्ल.)* इस्लाम के लिए जान लड़ानेवाले मुसलमानों का लश्कर लेकर काफ़िरों से इस्लाम की सरबुलंदी के लिए जंग लड़ रहे थे। हज़रत उस्मान *(रज़ि.)* भी उस लड़ाई में जाने को तैयार थे, लेकिन हज़रत रुक़य्या *(रज़ि.)* की हालत देखकर अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने आदेश दिया कि वे घर ही पर रहें और हज़रत रुक़य्या *(रज़ि.)* की सेवा और देख-भाल करें।

उस वक़्त उनपर घंटों बेहोशी रहने लगी। आख़िर वह घड़ी भी आ गई जिसका धड़का हज़रत उस्मान *(रज़ि.)* को लगा हुआ था। आँखों से आँसू बह रहे थे और इसी हाल में वे हज़रत रुक़य्या *(रज़ि.)* के नूरानी चेहरे पर चादर डाल रहे थे, क्योंकि अब वे अपने रब से जा मिली थीं— "इन्ना लिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजिऊन।"

ठीक उसी समय एक व्यक्ति बद्र के मैदाने-जंग से आया और उसने यह ख़ुशख़बरी सुनाई कि इस महायुद्ध में अल्लाह ने मुसलमानों को उनकी संख्या कम होने के बावजूद विजय प्रदान की।

नबी *(सल्ल.)* जब वापस आए तो सबसे पहली ख़बर आप *(सल्ल.)* को हज़रत रुक़य्या *(रज़ि.)* की मृत्यु की मिली। आप *(सल्ल.)* को इस हादसे का बड़ा ग़म हुआ, आँखों से आँसू जारी हो गए। आप *(सल्ल.)* ने जब देखा कि हज़रत फ़ातिमा *(रज़ि.)* अपनी बड़ी बहन को याद करके

निढाल हो रही हैं और फूट-फूटकर रो रही हैं तो नबी *(सल्ल.)* ने उनको सांत्वना दी।

जो औरतें वहाँ मौजूद थीं, वे भी ग़मगीन और दुखी हो कर रो रही थीं, जब कुछ आवाज़ तेज़ हुई तो नबी *(सल्ल.)* ने फ़रमाया—

"रोने में कोई आपत्ति नहीं, लेकिन मृतक के शोक में विलाप और मातम करना शैतानी हरकत है।"

हज़रत फ़ातिमा *(रज़ि.)* भी बहन की मृत्यु पर बहुत शोकाकुल थीं। क़ब्र के पास बैठ कर रोती जाती थीं और नबी *(सल्ल.)* कपड़े से उनके आँसू पोंछते जाते थे।

हज़रत उम्मे-कुलसूम *(रज़ि॰)*

हज़रत उम्मे कुलसूम *(रज़ि.)* नबी *(सल्ल.)* की तीसरी बेटी थीं। ये हज़रत रुक़य्या *(रज़ि.)* से छोटी और हज़रत फ़ातिमा से बड़ी थीं। हज़रत रुक़य्या *(रज़ि.)* की मृत्यु के बाद अब हज़रत उम्मे-कुलसूम *(रज़ि.)* ही घर में रह गई थीं जिनसे छोटी बहन होने के नाते हज़रत फ़ातिमा को ठण्डक मिलती थी। माँ ख़दीजा *(रज़ि.)* की मृत्यु तो पहले ही हो चुकी थी।

उम्मे-कुलसूम *(रज़ि.)* बड़ी साहसी और बड़ी धैर्यशील महिला थीं। उन्होंने मक्का में काफ़िरों की ओर से किए जानेवाले अत्याचार और तकलीफ़ का सामना ईमान और सब्र के साथ किया था। इन सारी मुसीबतों ने उनके दिल में बड़ी नरमी पैदा कर दी थी। जिस समय नबी *(सल्ल.)* और आपके जाँनिसार साथियों को क़ुरैश ने अबू-तालिब की घाटी में क़ैद कर दिया था और उन तक खाने-पीने की चीज़ें पहुँचने पर रोक लगा रखी थी, तो उन्होंने ये तीन साल बड़ी तकलीफ़ में गुज़ारे थे। हज़रत उम्मे-कुलसूम *(रज़ि.)* भी अपने वालिद मुहम्मद *(सल्ल.)* के साथ उस घाटी में थीं। कभी-कभी चोरी-छिपे कुछ लोग वहाँ थोड़ी-बहुत खाने-पीने की चीज़ पहुँचा देते थे। एक बार हकीम बिन-हिज़ाम अपने ग़ुलाम के साथ हज़रत ख़दीजा *(रज़ि.)* की ख़िदमत में कुछ खाने-पीने का सामान लेकर जा रहे थे। अबू-जहल ने देखा तो बोला, "ख़बरदार! एक क़दम भी आगे मत बढ़ाना, यहीं से लौट जाओ। आइंदा अगर हमने देख लिया तो हमसे बुरा कोई न होगा।" वे लौट आए।

हज़रत उम्मे-कुलसूम *(रज़ि.)* अपने वालिद मुहम्मद *(सल्ल.)* के स्नेह और प्रेम के सहारे ये कठिन दिन गुज़ार रही थीं। उनकी बड़ी बहन हज़रत ज़ैनब *(रज़ि.)* अपनी ससुराल में अपने शौहर अबुल-आस के साथ

थीं, लेकिन उनसे मिलने की कोई राह न थी। उनकी दूसरी बहन हज़रत रुक़य्या *(रज़ि.)* दूरस्थ देश हब्शा में अपने शौहर हज़रत उस्मान *(रज़ि.)* के साथ थीं। वे तो और भी ज़्यादा दूर थीं। उनकी माँ हज़रत ख़दीजा *(रज़ि.)* भी उस घाटी में थीं। वे क़ैद, उपवास और रंज के कारण बीमार पड़ गईं। हज़रत फ़ातिमा *(रज़ि.)* माँ की सेवा करतीं और अक्सर उनको तसल्ली देतीं। कहतीं, "अम्मी! आप घबराएँ नहीं, आप को कुछ नहीं होगा। मुसीबत के दिन कट जाएँगे।"

हज़रत ख़दीजा *(रज़ि.)* बहुत कमज़ोर हो गई थीं। तीन साल के बाद जब वे क़ैद से अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* के साथ रिहा हुईं तो चलने-फिरने की ताक़त भी न रही, बिल्कुल बिस्तर से लग गईं। नुबुव्वत का दसवाँ साल था और रमज़ान की दसवीं तारीख़ थी। हज़रत ख़दीजा *(रज़ि.)* अपनी बेटियों को अल्लाह के सुपुर्द करके दुनिया से विदा हो गईं। नबी *(सल्ल.)* को ख़दीजा *(रज़ि.)* की जुदाई का बहुत ग़म हुआ। आप *(सल्ल.)* ने उस पूरे साल को 'ग़म का साल' क़रार दिया।

अब नबी *(सल्ल.)* की बेटियों में बड़ी बेटी उम्मे-कुलसूम ही थीं। इस लिए उनकी ज़िम्मेदारियाँ बहुत बढ़ गईं। उन्होंने बड़ी संजीदगी और सब्र के साथ अपनी सारी ज़िम्मेदारियाँ पूरी कीं। अपनी छोटी बहन फ़ातिमा *(रज़ि.)* की भी देख-भाल की और उसकी तर्बियत जैसी चाहिए थी वैसी की।

फिर जब नबी *(सल्ल.)* ने मदीना को हिजरत की तो उम्मे-कुलसूम *(रज़ि.)* और फ़ातिमा ज़हरा *(रज़ि.)* मक्का ही में रह गईं। नबी *(सल्ल.)* ने मदीना तय्यबा पहुँचने के बाद ज़ैद-बिन-हारिसा को मक्का भेजा ताकि वे आप *(सल्ल.)* की बच्चियों को मदीना ले आएँ तो उम्मे-कुलसूम *(रज़ि.)* और हज़रत फ़ातिमा *(रज़ि.)* अपनी मेहरबान माँ कि क़ब्र और मक्के की गलियाँ छोड़कर मदीना पहुँचीं।

हिजरत के दो साल गुज़र गए। इस अवधि में बड़े-बड़े हादसे और घटनाएँ घटित हुईं। हज़रत उम्मे-कुलसूम *(रज़ि.)* ने यह दृश्य भी देखा जब रसूल *(सल्ल.)* बद्र के मैदान की जीत के बाद मदीना तय्यबा बहुत ख़ुश-ख़ुश लौटे, मगर वहाँ पहुँचकर आप *(सल्ल.)* सख़्त ग़म और परेशानी से दोचार हुए। आप *(सल्ल.)* की चहेती बेटी हज़रत रुक़य्या *(रज़ि.)* जिन्हें आप *(सल्ल.)* बीमार छोड़ कर गए थे, दुनिया से जा चुकी थीं। दोनों बहनें हज़रत उम्मे-कुलसूम *(रज़ि.)* और हज़रत फ़ातिमा *(रज़ि.)* ग़म से निढाल थीं। जब अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* वापस तशरीफ़ लाए तो उन्हें देखकर फूट-फूट कर रोने लगीं। आप *(सल्ल.)* उनके आँसू पोंछते जाते थे। ख़ुद आप *(सल्ल.)* की पाक आखों में भी आँसू तैर रहे थे।

जब हिजरत का तीसरा साल चल रहा था तो यह ग़म ताज़ा था। हज़रत उस्मान ग़नी *(रज़ि.)* भी अपने दिल पर बीवी की जुदाई का दाग़ लिए बैठे थे। अकसर नबी *(सल्ल.)* की सेवा में हाज़िर होते थे, इससे उनके दिल को सुकून मिलता और ग़म का बोझ कुछ हल्का हो जाता।

एक दिन नबी *(सल्ल.)* की सेवा में हज़रत उमर *(रज़ि.)* हाज़िर हुए, बहुत परेशान थे। नबी *(सल्ल.)* ने जब परेशानी की वजह पूछी तो उन्होंने कहा कि हमें इस बात का बड़ा दुख है कि हमने अपनी बेटी हफ़्सा के लिए हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ *(रज़ि.)* से और हज़रत उस्मान *(रज़ि.)* से रिश्ता माँगा, लेकिन दोनों सज्जनों ने इनकार कर दिया। नबी *(सल्ल.)* ने उन्हें प्यार व मुहब्बत से समझाया और तसल्ली दी। जब थोड़ा उन्हें सुकून हो गया तो फ़रमाया—

> "हफ़्सा की शादी जिस व्यक्ति से होगी वह अबू-बक्र *(रज़ि.)* और उस्मान *(रज़ि.)* से बेहतर है और उस्मान की शादी जिससे होगी वह हफ़्सा से बेहतर है।"

जो बात इशारों में कही गई थी उसकी व्याख्या यह है कि नबी *(सल्ल.)* ने हज़रत हफ़्सा *(रज़ि.)* को अपने घर में जगह दी। इसमें क्या

सन्देह कि नबी *(सल्ल.)* हज़रत उस्मान *(रज़ि.)* से बेहतर थे। अतएव यह वादा पूरा हो गया। फिर नबी *(सल्ल.)* ने हज़रत उस्मान से फ़रमाया, "मैं उम्मे-कुलसूम *(रज़ि.)* का निकाह तुमसे किए देता हूँ।" हज़रत उम्मे-कुलसूम हर एतिबार से हज़रत हफ़्सा से बेहतर थीं। इस तरह नबी *(सल्ल.)* ने हज़रत उमर *(रज़ि.)* को तसल्ली देते हुए जो कुछ फ़रमाया था उसे सच कर दिखाया और तीसरी हिजरी के माह रबीउल-अव्वल में हज़रत उम्मे-कुलसूम की शादी हज़रत उस्मान *(रज़ि.)* से हो गई।

हज़रत उम्मे-कुलसूम *(रज़ि.)* जब विदा होकर हज़रत उस्मान ग़नी *(रज़ि.)* के घर आईं तो छः साल तक बड़े आराम से रहीं। अल्लाह के फ़ज़्ल से हर तरह का सुख और आराम उन्हें हासिल था।

उन्होंने अपनी आँखों से देखा कि नबी *(सल्ल.)* एक के बाद दूसरे जिहाद के लिए बराबर बाहर जा रहे हैं। एक लड़ाई ख़त्म होती है तो दूसरी सामने आ जाती है। नबी *(सल्ल.)* बड़ी साबित-क़दमी के साथ जिहाद करते हैं और हर लड़ाई से कामयाब हो कर वापस आते हैं। इन लड़ाइयों में उस्मान *(रज़ि.)* मुजाहिद के रूप में नबी *(सल्ल.)* के साथ होते हैं।

छठे वर्ष ज़ी-कादा के महीने में नबी *(सल्ल.)* पन्द्रह सौ जाँनिसार साथियों को लेकर उमरा के लिए निकले। किसी के पास कोई हथियार न था, तलवार ज़रूर साथ थी, लेकिन म्यान में थी।

क़ुरैश ने रास्ता रोका और उन्होंने कहा कि हम मक्का में प्रवेश नहीं होने देगें, तो नबी *(सल्ल.)* ने अपने दामाद हज़रत उस्मान ग़नी *(रज़ि.)* को आदेश दिया कि वे मक्का जाएँ और क़ुरैशवालों से मिलें। उन्हें यह बताएँ कि हम जंग के इरादे से नहीं आए हैं। हम तो सिर्फ़ उमरा के लिए आए हैं। हमारे पास क़ुरबानी के जानवर भी मौजूद हैं। हमारी ख़्वाहिश सिर्फ़ इतनी है कि उमरा करें और वापस चले जाएँ।

इधर हज़रत उम्मे-कुलसूम *(रज़ि.)* का दिल सहमा हुआ था कि ऐसा न हो कि उनके शौहर को क़ुरैशवाले गिरफ़्तार कर लें और उनपर सख़्ती करने लगें। और जब हज़रत उस्मान *(रज़ि.)* की वापसी में देर हुई तो उनकी परेशानी और भी बढ़ गई। हज़रत उस्मान *(रज़ि.)* की वापसी का इन्तिज़ार सिर्फ़ उम्मे-कुलसूम *(रज़ि.)* ही को नहीं, बल्कि सारे सहाबा *(रज़ि.)* को था।

बेचैनी बहुत बढ़ रही थी, इतने में ख़बर मिली कि हज़रत उस्मान को मक्कावालों ने क़त्ल कर दिया। हज़रत उम्मे-कुलसूम को जब यह ख़बर मिली तो वे तड़पकर रोने लगीं।

नबी *(सल्ल.)* ने तमाम सहाबा *(रज़ि.)* को तुरन्त जमा किया, जब लोग जमा हो गए तो नबी *(सल्ल.)* ने उनसे वचन लिया कि वे हज़रत उस्मान *(रज़ि.)* के क़त्ल का बदला लेंगे और हज़रत उस्मान *(रज़ि.)* की तरफ़ से ख़ुद नबी *(सल्ल.)* ने अपने बाएँ हाथ पर दाहिना हाथ रखकर फ़रमाया कि वह उस्मान का हाथ है और मैं उनकी ओर से प्रण करता हूँ। इस वचन को 'बैअ़ते-रिज़वान' कहते हैं।

हज़रत उम्मे-कुलसूम *(रज़ि.)* ग़म से निढाल हो रही थीं। इतने में हज़रत उस्मान ग़नी *(रज़ि.)* मक्का से वापस हुए। उनको देखकर सब को हैरत और ख़ुशी हुई। इस तरह हज़रत उम्मे-कुलसूम *(रज़ि.)* की जान में जान आई, फिर नबी *(सल्ल.)* और क़ुरैशवालों में सन्धि हुई। नबी *(सल्ल.)* ने समझौते का मज़मून स्वयं लिखवाया। इसमें कुछ शर्तें ऐसी थीं कि जिनके बारे में हज़रत उमर *(रज़ि.)* और हज़रत उस्मान *(रज़ि.)* की सोच थी कि वे न होतीं तो अच्छा था। उन दोनों सज्जनों ने अपना विचार प्रकट भी किया, मगर नबी *(सल्ल.)* का फ़ैसला अपनी जगह पर अटल रहा।

सहाबा *(रज़ि.)* ने जब देखा कि नबी *(सल्ल.)* ने स्वयं क़ुरबानी की है और अपने सिर के बाल उतरवाए हैं तो उन्होंने भी ऐसा ही किया। कुछ

लोगों ने बाल उतरवाने के बजाय छोटे कराए। हज़रत उम्मे-कुलसूम *(रज़ि.)* ने अपने वालिद मुहम्मद *(सल्ल.)* को यह कहते हुए सुना—

"अल्लाह उन लोगों पर रहम फ़रमाए जिन्होंने अपने बाल उतरवाए।"

मक्का-विजय के बाद हज़रत उम्मे-कुलसूम *(रज़ि.)* को अपनी माँ हज़रत ख़दीजा *(रज़ि.)* बहुत याद आने लगीं। अपनी माँ की क़ब्र की ज़ियारत के लिए मक्का जाने की बड़ी ख़्वाहिश पैदा हुई। उन्होंने इसका ज़िक्र अपने वालिद हज़रत मुहम्मद *(सल्ल.)* से किया और अपने पति हज़रत उस्मान *(रज़ि.)* से भी। उन्हें मक्का जाने की इजाज़त मिल गई लेकिन ज़िन्दगी ने साथ न दिया और शाबान के महीने में सन् नौ हिजरी में वे चल बसीं।

"इन्ना लिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजिऊन।"

(निस्संदेह हम अल्लाह ही के लिए हैं और हमें उसी की ओर पलट कर जाना है।)

अपनी बड़ी बहन हज़रत रुक़य्या *(रज़ि.)* के पहलू में वे दफ़न की गईं। इनकी कोई सन्तान नहीं थी।

हज़रत फ़ातिमा ज़हरा *(रज़ि.)*

नबी *(सल्ल.)* की सबसे छोटी बेटी हज़रत फ़ातिमा *(रज़ि.)* हैं। उनकी उपाधि ज़हरा है। नबी *(सल्ल.)* जिस वर्ष नबी बनाए गए उसी वर्ष वे मक्का में पैदा हुईं।

शक्लो-सूरत में अपने वालिद हज़रत मुहम्मद *(सल्ल.)* से बहुत मिलती-जुलती थीं। नबी *(सल्ल.)* और हज़रत ख़दीजा *(रज़ि.)* की निगाह से वे अपनी बहनों के बीच चहेती थीं। बड़ी बहन हज़रत ज़ैनब *(रज़ि.)* उनको बहुत प्यार करती थीं। उनको बहलाती थीं और हमेशा अपने साथ रखती थीं।

प्रेम और चाहत के माहौल में हज़रत फ़ातिमा *(रज़ि.)* ने आँखें खोलीं और नबी *(सल्ल.)* की तर्बियत से उनका व्यक्तित्व निखर गया। उन्होंने नबी *(सल्ल.)* के ऊँचे अख़लाक़ की झलकियाँ अपनी आँखों से देखी थीं। नबी *(सल्ल.)* जब बाहर निकलते तो वे प्रायः साथ होतीं। नबी *(सल्ल.)* से उन्हें बेहद प्यार था। उनके स्वभाव में स्वाभिमान कूट-कूटकर भरा था। बड़े ऊँचे चरित्र और सुन्दर स्वभाव की महिला थीं।

मक्कावाले नबी *(सल्ल.)* पर जो अत्याचार करते उसे देखकर हज़रत फ़ातिमा *(रज़ि.)* बहुत रोतीं। लेकिन उम्र में छोटी होने के कारण वे कुछ कर नहीं सकती थीं, बस अफ़सोस कर के रह जाती थीं। कभी वे अपने वालिद के तलवों से काँटे निकालतीं, तो कभी आप *(सल्ल.)* के चेहरे से गर्द-गुबार साफ़ करतीं, जिसे दुश्मन आप *(सल्ल.)* के सिर पर डाल देते थे। उनके जी में आता कि नबी *(सल्ल.)* की तरफ़ ज़ुल्म के लिए बढ़नेवाले हाथों को काट दें, लेकिन कमसिनी की वजह से उनका कुछ बस न चलता और तिलमिला कर रह जातीं।

जिस समय अबू-तालिब की घाटियों में नबी *(सल्ल.)* और आप के घराने के लोगों को क़ैद किया गया था, हज़रत फ़ातिमा *(रज़ि.)* ने भी सबके साथ बहुत तकलीफ़ें उठाईं। उस समय की भूख-प्यास और रंज का असर उम्र भर आप *(रज़ि.)* की सेहत पर रहा।

बचपन में हज़रत फ़ातिमा *(रज़ि.)* को बड़े संकट का सामना करना पड़ा। माँ हज़रत ख़दीजा *(रज़ि.)* आपको अल्लाह के सुपुर्द कर के परलोक को सिधारीं। इस दर्दनाक हादसे, ग़म और मलाल ने आपको इतना प्रभावित किया कि ताउम्र उससे उबर न सकीं।

अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* पर काफ़िरों की ओर से ज़ुल्म का सिलसिला बढ़ता ही जा रहा था। अब वे लोग भी ज़ुल्म का शिकार होने लगे जो नबी *(सल्ल.)* पर ईमान लाए थे। अबू-तालिब का इन्तिक़ाल हो चुका था। हज़रत फ़ातिमा *(रज़ि.)* की माँ भी दुनिया से रुख़सत हो चुकीं थीं, ऐसे में ज़ालिमों के हौसले बहुत बढ़ गए थे। इन सब मुसीबतों के होते हुए भी अल्लाह का दीन मक्का और आस-पास के शहरों और देहातों में तेज़ी के साथ फैलने लगा था। हर तकलीफ़ और कष्ट झेलकर भी नबी *(सल्ल.)* सभी लोगों को अल्लाह के दीन की तरफ़ बुलाते रहे।

इतने में अल्लाह की ओर से हिजरत का आदेश आ गया। प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने सहाबा *(रज़ि.)* को मक्का छोड़कर मदीना जाने का हुक्म दिया। बाद में आप *(सल्ल.)* ख़ुद भी हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ *(रज़ि.)* को साथ लेकर मदीना हिजरत कर गए। वहाँ पहुँचकर एक बड़े सच्चे और अमानतदार सहाबी हज़रत ज़ैद *(रज़ि.)* को मक्का भेजा ताकि वहाँ से हज़रत उम्मे-कुलसूम *(रज़ि.)* और हज़रत फ़ातिमा *(रज़ि.)* को ले आएँ क्योंकि ये दोनों बेटियाँ मक्का ही में रह गई थीं और इन दोनों बेटियों पर अपने वालिद मुहम्मद *(सल्ल.)* की जुदाई असहय हो रही थी।

अतः जब वे मदीना पहुँचीं तो नबी *(सल्ल.)* को देखते ही उन मासूमों के चेहरे खिल उठे और जान में जान आ गई। बड़े आराम व

सुकून के माहौल में वे अब नबी *(सल्ल.)* के स्नेह की छाया में ज़िंदगी गुज़ारने लगीं।

हज़रत फ़ातिमा *(रज़ि.)* बड़ी हुईं तो उनके लिए हर ओर से पैग़ाम आने लगे, मगर नबी *(सल्ल.)* ने क़बूल नहीं किया। फ़िर हज़रत उमर *(रज़ि.)* ने हज़रत अली *(रज़ि.)* को इशारा किया कि वे अपने लिए रिश्ते की दरख़ास्त करें। हज़रत अली *(रज़ि.)* ने पूछा—

"क्या आप का ख़याल है कि दरख़ास्त क़बूल हो जाएगी?"

हज़रत उमर *(रज़ि.)* ने कहा, "आप सबसे पहले इस्लाम स्वीकार करने वालों में से हैं, नबी *(सल्ल.)* से आपका नज़दीक़ी रिश्ता है और नबी *(सल्ल.)* के दिल में आपकी बड़ी जगह है, इसलिए मेरा तो ख़याल है कि आप ही हज़रत फ़ातिमा *(रज़ि.)* के रिश्ते के लिए सबसे ज़्यादा मुनासिब हैं।"

एक दिन डरते-डरते हज़रत अली *(रज़ि.)* नबी *(सल्ल.)* की सेवा में हाज़िर हुए और क़रीब ही बैठ गए। कुछ शरमाए-शरमाए से थे। आने की वजह बताने की हिम्मत न हुई। नबी *(सल्ल.)* ने बड़े स्नेह के साथ स्वयं पूछा—

"अबू-तालिब के बेटे! क्या बात है? कैसे आना हुआ?"

हज़रत अली *(रज़ि.)* ने काँपती हुई आवाज़ में डरते-डरते कहा, "अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)*! मैं आप *(सल्ल.)* की बेटी फ़ातिमा के बारे में सोच रहा था।"

नबी *(सल्ल.)* का मुबारक चेहरा ख़ुशी से खिल उठा। फ़रमाया—

"ख़ूब! बहुत ख़ूब!"

हज़रत अली *(रज़ि.)* ख़ुश-ख़ुश वापस हुए। रास्ते में कुछ लोगों के पूछने पर आपने नबी *(सल्ल.)* का जवाब बताया तो सभी ने कहा कि बस यह जवाब काफ़ी है। आपकी दरख़ास्त मंज़ूर हो गई।

दूसरी सुबह को हज़रत अली *(रज़ि.)* फिर नबी *(सल्ल.)* की सेवा में उपस्थित हुए तो आप *(सल्ल.)* ने हज़रत अली *(रज़ि.)* से पूछा, "महर के लिए कुछ है, तुम्हारे पास?"

उन्होंने कहा, "नहीं, अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)*!"

नबी *(सल्ल.)* ने फ़रमाया, "वह ज़िरह क्या हुई जो जंगे-बद्र में हाथ आई थी?"

हज़रत अली *(रज़ि.)* ने कहा, "वह तो मौजूद है।"

आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया, "बस वह काफ़ी है।"

फिर हज़रत अली *(रज़ि.)* उस ज़िरह को लेकर नबी *(सल्ल.)* की सेवा में उपस्थित हुए तो आप *(सल्ल.)* ने उसको बेचने का हुक्म दिया, ताकि उससे हासिल होनेवाली रक़म से शादी का सामान तैयार को सके। हज़रत अली *(रज़ि.)* जब वह ज़िरह बेचने के लिए गए तो रसूल *(सल्ल.)* के मशहूर सहाबी और दामाद हज़रत उसमान ग़नी *(रज़ि.)* ने वह ज़िरह 470 दिरहम में ख़रीद ली।

हज़रत अली *(रज़ि.)* ने वह रक़म ले जाकर नबी *(सल्ल.)* की सेवा में रख दी। नबी *(सल्ल.)* ने हज़रत बिलाल बिन-रिबाह *(रज़ि.)* को बुलाकर कुछ दिरहम दिए कि वे कुछ इतर और ख़ुशबू ख़रीद लाएँ और बाक़ी रक़म उम्मे-सलमा को दी कि वे दुल्हन के लिए सामान ख़रीद लें।

फिर नबी *(सल्ल.)* ने हज़रत अनस *(रज़ि.)* की तरफ़ नज़र उठाई और फ़रमाया, "जाओ अबू-बक्र, उमर, उस्मान, तलहा, ज़ुबैर और कुछ अंसार सहाबा *(रज़ि.)* को बुला लाओ?"

यह हुक्म पाकर, हज़रत अनस *(रज़ि.)* लोगों को बुलाने चले गए और नबी *(सल्ल.)* अपनी बेटी हज़रत फ़ातिमा *(रज़ि.)* के पास गए ताकि उनकी मर्ज़ी मालूम कर लें। नबी *(सल्ल.)* ने कहा—

"फ़ातिमा! अली तुम्हारा ज़िक्र कर रहे थे।"

हज़रत फ़ातिमा *(रज़ि.)* ने शर्म से सिर झुका लिया, यह उनकी सहमति की पहचान थी। नबी *(सल्ल.)* बाहर तशरीफ़ लाए। सहाबा *(रज़ि.)* बड़ी संख्या में जमा थे। आप *(सल्ल.)* ने ख़ुतबा पढ़ा और थाल में खुजूर मँगवाकर मेहमानों का स्वागत किया। लोग खा ही रहे थे कि हज़रत अली *(रज़ि.)* आ गए। नबी *(सल्ल.)* ने फ़रमाया, "वह देखो, अली *(रज़ि.)* आ रहे हैं।" सबकी निगाहें उनकी ओर उठ गईं। नबी *(सल्ल.)* ने हज़रत अली *(रज़ि.)* को सम्बोधित किया और कहा—

"अली! अल्लाह ने मुझे आदेश दिया है कि मैं फ़ातिमा को तुमसे ब्याह दूँ, तो मैंने तुमसे उसका निकाह कर दिया और 400 मिस्क़ाल[1] चाँदी मह्र तय की।"

हज़रत अली *(रज़ि.)* के लिए यह बड़े गर्व और ख़ुशी की बात थी। वे तुरंत सजदे में गिर गए और अल्लाह का शुक्र अदा किया। जब उन्होंने सजदे से सिर उठाया तो नबी *(सल्ल.)* ने उनको बहुत-सी दुआएँ दीं।

यह था विश्वनायक की बिटिया फ़ातिमा *(रज़ि.)* की शादी का समारोह जो सादगी, ख़ूबी और शालीनता का प्रतीक था जो नबी *(सल्ल.)* की दुआओं के साथ सम्पन्न हुआ। सारे मुसलमान इस शादी पर बेइन्तिहा ख़ुश थे। उस समय हज़रत फ़ातिमा *(रज़ि.)* की उम्र 15 वर्ष 5 माह थी।

जिस दिन शादी हुई, नबी *(सल्ल.)* ने हज़रत फ़ातिमा *(रज़ि.)* को हज़रत अली *(रज़ि.)* के घर विदा किया। देख-भाल के लिए हज़रत उम्मे-सलमा को साथ किया।

उसी दिन इशा की नमाज़ के बाद नबी *(सल्ल.)* अली *(रज़ि.)* के घर पहुँचे और इजाज़त लेकर अन्दर तशरीफ़ ले गए। पानी मँगवाया, वुज़ू

---

[1] 150 तोला

किया और अली *(रज़ि.)* व फ़ातिमा *(रज़ि.)* के लिए हर तरह की बरकत की। दुआ की हज़रत फ़ातिमा *(रज़ि.)* को हिदायत की कि वे हज़रत अली *(रज़ि.)* का आदर एवं सम्मान किया करें। यही हिदायत हज़रत अली *(रज़ि.)* को फ़ातिमा *(रज़ि.)* के बारे में भी की। यह भी कहा—

> "अली, ग़ुस्सा न किया करो। जब ग़ुस्सा आए तो बैठकर अल्लाह की याद में लग जाया करो और यह सोचा करो कि अपने बंदों पर पूरा सामर्थ्य होते हुए भी अल्लाह उनसे कितनी दयालुता और सहनशीलता का व्यवहार करता है।"

इस नसीहत के बाद नबी *(सल्ल.)* अपने घर वापस आए। मदीना के कोने-कोने में ख़ुशी की लहर दौड़ रही थी।

नबी *(सल्ल.)* के चचा हज़रत हमज़ा *(रज़ि.)* तो इतने प्रसन्न थे कि उन्होंने दो मेंढे मँगवाए और उन्हें ज़बह किया और बहुत-से लोगों की दावत की। यह हज़रत अली *(रज़ि.)* की ओर से वलीमा था। और फिर वे इतना ख़ुश क्यों न हों, हज़रत हमज़ा *(रज़ि.)* हज़रत अली *(रज़ि.)* के चचा थे। उन्हें इसका पूरा-पूरा हक़ था।

शादी के एक साल बाद हज़रत अली *(रज़ि.)* को अल्लाह ने एक बेटा प्रदान किया। नबी *(सल्ल.)* को बहुत ख़ुशी हुई। आप *(सल्ल.)* ने उनका नाम हसन रखा। नबी *(सल्ल.)* के इस कथन की व्याख्या साकार हुई कि—

> "हर नबी की नस्ल का सिलसिला उसके अपने ख़ुद के बेटों से चला है, लेकिन मेरी नस्ल का सिलसिला अली की सन्तान से चलेगा, अल्लाह का फ़ैसला यही है।"

हज़रत हसन *(रज़ि.)* के बाद हज़रत हुसैन *(रज़ि.)* पैदा हुए। तीसरे बेटे हज़रत मुहसिन थे, जो बचपन ही में अल्लाह को प्यारे हो गए। कुछ अरसे बाद हज़रत ज़ैनब पैदा हुईं। वे जब बड़ी हुईं तो हज़रत अली

(रज़ि.) ने उनकी शादी अब्दुल्लाह बिन-जाफ़र तय्यार से कर दी। दूसरी बेटी उम्मे-कुलसूम थीं।

हज़रत फ़ातिमा जब हज़रत अली *(रज़ि.)* के घर आईं तो अपने आचार-व्यवहार और मुहब्बत से सबका दिल जीत लिया। अपनी मेहनत से सारे घर को जन्नत का नमूना बना दिया। हज़रत फ़ातिमा *(रज़ि.)* की दानशीलता, हमदर्दी और अच्छे अख़लाक़ की चर्चा पास-पड़ोस के तमाम लोगों की ज़बानों पर थी और इसी के साथ नमाज़ और इबादत का सिलसिला भी बराबर जारी था। सच्चाई उनके स्वभाव की महत्वपूर्ण विशेषता थी। उनकी बातचीत का अंदाज़ एक दम सरल एवं स्पष्ट था। हज़रत आइशा *(रज़ि.)* कहती हैं—

> "मैंने अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* के बाद फ़ातिमा *(रज़ि.)* से ज़्यादा स्पष्ट किसी को बोलनेवाला नहीं पाया।"

फ़ातिमा *(रज़ि.)* बड़ी शर्मीली और हयादार थीं। एक बार नबी *(सल्ल.)* ने उनको बुलवाया तो शर्म के मारे लड़खड़ाती हुई आईं। उनकी वसीयत थी कि उनके जनाज़े पर परदा किया जाए। औरतों के जनाज़े पर जो परदा डाला जाता है, वह हज़रत फ़ातिमा *(रज़ि.)* ही की सुन्नत की पैरवी है।

वे नबी *(सल्ल.)* से बहुत ज़्यादा प्रेम करती थीं। एक बार आप *(सल्ल.)* जब नमाज़ की हालत में थे तो अक़बा ने आप *(सल्ल.)* की गर्दन पर ऊँट की ओझ लाकर डाल दी। क़ुरैशवाले बहुत ख़ुश हुए। हज़रत फ़ातिमा *(रज़ि.)* को जब पता चला तो वे दौड़ी हुई आईं। हालाँकि उस वक़्त वे पाँच-छः साल की थीं। ओझ हटाकर अक़बा को बुरा-भला कहा और उसको बद्दुआएँ दीं।

नबी *(सल्ल.)* भी उनसे बहुत प्यार करते थे। जब भी आप *(सल्ल.)* सफ़र पर जाते तो सबसे आख़िर में हज़रत फ़ातिमा *(रज़ि.)* के घर जाते

और वापस आते तो सबसे पहले हज़रत फ़ातिमा *(रज़ि.)* ही आप *(सल्ल.)* की सेवा में उपस्थित होतीं।

हज़रत फ़ातिमा *(रज़ि.)* घर आतीं तो नबी *(सल्ल.)* मुहब्बत के मारे खड़े हो जाते और उनका माथा चूमकर अपनी जगह से हट जाते और उन्हें अपनी जगह पर बिठाते। उन्हें औरतों का सरदार बताते हुए, आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया—

> "पैरवी करने के लिए तमाम दुनिया की औरतों में मरियम, ख़दीजा, फ़ातिमा और आयशा तुम्हारे लिए काफ़ी हैं।"

हज़रत फ़ातिमा *(रज़ि.)* बड़ी सादगी से जीवन व्यतीत करतीं। उन्हें शानो-शौकत, बनावट और दिखावे से बड़ी नफ़रत थी। मेहनत, सादगी, इबादत और अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* की मुहब्बत, लोगों के साथ अच्छे व्यवहार और बर्ताव आप *(रज़ि.)* के जीवन के महत्वपूर्ण सिद्धांत थे।

अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने अपनी देख-रेख में हज़रत फ़ातिमा में सभी अच्छे गुणों का विकास किया, साथ ही इल्म का भी अच्छा शौक़ उनमें पैदा किया। दीन की बातों की समझ-बूझ उनमें बहुत थी, अपने समय में वे हदीस-ज्ञान की बड़ी विदुषी थीं।

हज़रत अली *(रज़ि.)*, हज़रत हसन *(रज़ि.)*, हज़रत हुसैन *(रज़ि.)*, हज़रत आइशा *(रज़ि.)*, हज़रत उम्मे-कुलसूम *(रज़ि.)*, हज़रत सलमा *(रज़ि.)*, उम्मे-राफ़ेअ और हज़रत अनस बिन-मालिक *(रज़ि.)* ने उनसे हदीसें बयान की हैं।

अल्लाह ने हज़रत फ़ातिमा *(रज़ि.)* को धैर्य और सहनशीलता की बड़ी शक्ति प्रदान की थी। बचपन ही से उन्हें बड़ी कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। मक्का में ईमानवालों पर उत्पीड़न और अत्याचार का जो दौर चल रहा था, मदीना में वह परिस्थिति सुकून और आराम में बदल चुकी थी। अल्लाह ने हज़रत फ़ातिमा *(रज़ि.)* को हसन और हुसैन जैसे होनहार सुपूत दिए। ज़ैनब और उम्मे-कुलसूम जैसी

कोमल बेटियाँ दीं। धन-दौलत उनके पास नहीं था। यदि कुछ पैसे आ भी जाते तो अपने ऊपर कम, ग़रीबों और निर्धनों पर अधिक ख़र्च हो जाते। लौंडी और ग़ुलाम भी घर पर न थे। चक्की पीसने की वजह से हाथ में छाले तक पड़ जाते, मगर उन्हें कोई शिकवा-शिकायत न थी। वे अल्लाह और उसके रसूल *(सल्ल.)* से राज़ी थीं। रंग-रूप में तो नबी *(सल्ल.)* से मिलती-जुलती थीं ही; आचरण और व्यवहार पर भी नबी *(सल्ल.)* के आचार-व्यवहार की पूरी प्रतिच्छाया थी। दानशीलता, उदारचित्त और निर्धनों की सेवा की सभी बातें ऐसी ही थीं, जैसे नबी *(सल्ल.)* की पवित्र जीवनी में मिलती हैं।

दिन इसी तरह सब्रो-शुक्र के साथ गुज़रते रहे, लेकिन कहते हैं कि सुख के दिन बहुत जल्द गुज़र जाते हैं और यही उनके साथ भी हुआ।

अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* जब अपना आख़िरी हज करके लौटे तो आप *(सल्ल.)* की बीमारी का सिलसिला शुरू हो गया। हज़रत फ़ातिमा *(रज़ि.)* ने जब सुना तो दौड़ी हुई आईं। नबी *(सल्ल.)* उन्हें देखकर ख़ुश हुए। उनका हाथ पकड़कर अपने क़रीब बिठाया और उनके कान में एक बात कही जिसे सुनकर वे रोने लगीं। फिर नबी *(सल्ल.)* ने कोई और बात उनके कान में कही जिसे सुन कर हँसने लगीं। हज़रत आइशा *(रज़ि.)* ने पूछा, "फ़ातिमा! बताओ, तुम क्यों रोईं और फिर क्यों हँसीं? क्या बात थी?"

हज़रत फ़ातिमा *(रज़ि.)* ने कहा कि "यह एक राज़ की बात है जो नबी *(सल्ल.)* ने मुझसे कही, मैं उसे ज़ाहिर नहीं करना चाहती।"

नबी *(सल्ल.)* के इन्तिक़ाल के बाद मौक़ा पाकर एक दिन हज़रत आइशा *(रज़ि.)* ने उनको बुलाया और कहा कि अब तो बता दो कि वह क्या बात थी! फ़ातिमा *(रज़ि.)* ने कहा—

"पहली बार नबी *(सल्ल.)* ने जो बात कही वह यह थी कि हर साल रमज़ान में जिबरील मेरे पास आते थे, एक बार पूरा क़ुरआन

मजीद वे मुझे सुनाते और एक बार मैं उनको सुनाता था, मगर इस बार उन्होंने क़ुरआन मजीद दो बार सुनाया और मैंने भी दो बार पढ़ा। इससे मुझे ख़्याल होता है कि अब मेरा आख़िरी वक़्त क़रीब है, यह सुनकर मैं आँसू न रोक सकी और रो पड़ी। दूसरी बात जो नबी *(सल्ल.)* ने कही वह यह थी कि फ़ातिमा! मेरे तमाम लोगों में सबसे पहले तुम मुझसे मिलोगी, तो मैं यह ख़ुशख़बरी सुन कर हँस पड़ी।"

आगे चलकर ऐसा ही हुआ।

नबी *(सल्ल.)* को जो तकलीफ़ थी वह बढ़ती रही और आख़िर में वह वक़्त आ ही गया जब अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* अपने रब से जा मिले।

हज़रत फ़ातिमा *(रज़ि.)* फूट-फूटकर रोईं। अगर सुकून मिलता था तो सिर्फ़ इस बात से कि नबी *(सल्ल.)* ने सबसे पहले मिलने की ख़ुशख़बरी उनको दी है। वरना उनके लिए तो सारी दुनिया अँधेरी हो चुकी थी। सहाबा *(रज़ि.)* का भी यही हाल था।

नबी *(सल्ल.)* के इन्तिक़ाल को मुश्किल से छः माह गुज़रे होंगे कि हज़रत फ़ातिमा *(रज़ि.)* बीमार पड़ीं, और यह बीमारी उनके लिए जानलेवा साबित हुई। उनकी इस असमय मौत से अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* की वह भविष्यवाणी पूरी हुई कि मेरे इन्तिक़ाल के बाद तुम सबसे पहले मुझसे मिलोगी। रमज़ान का मुबारक महीना, हिजरत का ग्यारहवाँ साल था कि आपने इस दुनिया से विदा ली। 'इन्ना लिल्लाहि व इन्ना इलैहि राज़िऊन।' हज़रत अली *(रज़ि.)* ने आप *(रज़ि.)* की नमाज़े-जनाज़ा पढ़ाई थी। मृत्यु के समय हज़रत फ़ातिमा की उम्र 28 वर्ष थी। इनकी क़ब्र जन्नतुल-बक़ीअ में है।

⊙⊙⊙